जैव-विविधता संरक्षण में सहायक भारत का पारंपरिक ज्ञान

डॉ0 ओम किशोर सिंह
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मगरहां, मीरजापुर - 231306

सारांशः
जैव-विविधता का तात्पर्य जीवन के विविध रूपों अर्थात् विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, एवं सूक्ष्म जीव समूह से है जिसमें उनके जीन्स तथा वे पारिस्थतिक प्रणालियां विद्यमान रहती हैं जिनका वे निर्माण करते हैं। वास्तव में, जैव-विविधता का संबंध उन गतिशील प्रक्रियाओं से है, जिनके माध्यम से आनुवंशिक रूपान्तरण के फलस्वरूप विभिन्न जीवों (पादपों, जन्तुओं, कवकों अथवा सूक्ष्म जीवों) की प्रजातियों की बढ़ोïारी अथवा उनका विनाश हो जाता है। जैव-विविधता संरक्षण का अभिप्राय प्रकृति द्वारा निर्मित जीवन समर्थक प्रणालियों को बनाए रखना तथा पारिस्थितिकी विषयक संपोष्य विकास के लिए अनिवार्य जीवन संसाधनों की रक्षा करना होता है। भारतीय संकृति अति प्राचीन काल से प्रकृति के विभिन्न घटकों के प्रति सुरक्षात्मक दृष्टिकोण वाली व पर्यावरण की पोषक रही है। हमारी प्रकृति पोषक परंपराओं के ही कारण हमारा देश भारत भी जैव-विविधता की दृष्टि से असाधारण समृद्धि रखता है। जैव-विविधता संरक्षण से ही धरा पर पारिस्थितिकीय संतुलन बना रह सकता है।

मुख्य शब्दः जैव-विविधता, आनुवंशिक रूपांतरण, पर्यावरण, संपोष्य विकास, जीन्स, परिस्थितिकीय संतुलन

जाने-माने भौतिक विज्ञानी व नोबेल पुरस्कार विजेता अल्बर्ट आइन्सटाइन ने लगभग सौ साल पहले ही कहा था कि - ''यदि धरती से मधुमक्खियाँ गायब हो जायेंगी तो मानव जाति को समझ लेना चाहिए कि बस आने वाले 04 वर्षो में वह भी समाप्त हो जाएगा।'' वास्तव में, मधुमक्खी जैसे नन्हे जीव भी इस संसार रूपी पारितंत्र के महत्वपूर्ण घटक हैं तथा उनसे स्वयं को अलग रख कर हम नहीं जी सकते। चींटी, मधुमक्खी, तितलियां आदि नन्हे जीवों का भी इस धरती पर जीने का उतना ही अधिकार है जितना कि अन्य जीवों का चाहे वह मनुष्य ही क्यों न हो । पर्यावरण की बिगड़ती दशा और खाद्य श्रिंखला (फूड वेब) की एक-एक कर टूटती हुई कड़ियों को देख कर यह स्पष्ट होता जा रहा है कि आइन्सटाइन का कथन सचमुच एक चेतावनी है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्टीफन हाकिंस ने भी यही सुझाव दिया है कि धरती के बिगड़ते पर्यावरण के दृष्टिगत मनुष्य को शीध्र ही पृथ्वी जैसे किसी अन्य ग्रह पर बसेरा करने के लिए स्थान खोज लेना चाहिए क्योंकि आने वाले सौ सालों के भीतर ही यह दुनियां एक रिहायशी आशियाना नहीं रह जाएगी। निश्चित रूप से ऐसी त्वरित पर्यावरणीय संकट की स्थिति पारिस्थितिकीय क्षति, पर्यावरण विधटन व जैव-विविधता के क्षरण के कारण उत्पन्न हुई है। वाशिंगटन विश्वविद्यालय के ख्यातिलब्ध जीवाश्म विज्ञानी पीटर डगलस वार्ड व उनके सहयोगी वैज्ञानिकों के शोध से प्राप्त निश्कर्षों से भी यही पता चला है कि यदि वातावरण में विषैली गैसों को छोड़नें और ऑक्सीज़न को कम करनें का सिलसिला इसी तरह चलता रहा तो निकट भविष्य में 90 फीसदी तक जीवन इस धरा से समाप्त हो सकता है जिस तरह से तकरीबन 25 करोड़ वर्ष पहले परमीयन युग में ऐसा हो चुका है।

कम से कम हम विश्व के इन महान वैज्ञानिकों की बातों पर भी ध्यान दें तो हमें वर्तमान पर्यावरणीय संकट की गम्भीरता का भान हो जाएगा। स्पष्ट है कि हम अपनें को प्रकृति से अलग करके अथवा स्वयं को उसके नियमों से अनाबद्ध करके छण भर भी जीवित नहीं रह सकते। उदाहरण के लिए हम यदि किसी व्यक्ति को एक कांच से निर्मित प्रकोष्ठ (ग्लास कैप्सूल) में बंद कर दें तो वह व्यक्ति कुछ ही देर में घुटन महसूस करने लगेगा तथा अगर उसे खुले वातावरण में नहीं लाया गया तो उसके प्राण संकट में पड़ सकते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि पौधों द्वारा उत्सर्जित प्राण वायु (ऑक्सीज़न) वहाँ समाप्त हो जाती है। हम सर्वदा अपनें चारो ओर पायी जाने वाली गैसें, विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों व छोटे-बड़े सभी प्रकार के जीव जन्तुओं से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े रहते हैं अर्थात् सभी जीव निरंतर अपने चारो ओर के वातावरण से कुछ न कुछ पदार्थ या उर्जा अथवा पदार्थ एवं उर्जा दोनों ही चीजों का आदान प्रदान करते रहते हैं। किसी भी जीव जन्तु अथवा वनस्पति को निहित स्वार्थ के लिए क्षति पहुंचाना प्राकृतिक पारितंत्र के संतुलन को बिगाड़ना है।

हमारी संस्कृति व पर्यावरण -

जाने माने विद्वान व उत्तराखण्ड के पूर्व मुख्यमंत्री डॉ0 रमेश पोखरियाल 'निशंक' के अनुसार ''संस्कृति का आविर्भाव अनायास ही नहीं होता। यह वर्षों की यात्रा करती है और देश, समय व स्थिति के अनुसार विविध रूप धारण कर आगे बढ़ती है।'' हमारे देश की संस्कृति का निर्माण शक्तिशाली राजाओं, धनाढ्य सामंतों या संपन्न व्यापारियों द्वारा अचानक ही नहीं किया गया है अपितु इसका निर्माण ऋषियों, मनीषियों, चिंतकों व परं तत्व को जानने वाले ब्रह्मज्ञानियों द्वारा क्रमागत रूप किए गए शोध, चिंतन, मनन योग, साधना व तथ्यों को अपने ज्ञान की कसौटी पर परख कर किया गया है, जीवन की सार्थकता एवं पूर्णता के विषय में जिनकी दृष्टि बहुत स्पष्ट और पैनी थी। प्राचीन काल में इन मनीषियों के पास इस स्थूल जगत के प्रत्येक कण में भी ईश्वर के सूक्ष्म बिम्ब को देखनें की शक्ति विद्यमान थी। ईशावास्योपनिषद् की यह उक्ति कुछ ऐसा ही इंगित करती है -

ईशा वास्यमिदं सर्वं यद्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्।।[1]

भारत देश मनीषियों, ऋषि-मुनियों, योगियों, साधकों, तपस्वियों, चिन्तकों व दार्शनिकों का देश रहा है जिनका अधिकतर जीवन प्रकृति के उपर ही निर्भर होता था। यही कारण है कि हमारे देश में अति प्राचीन काल से लोगों का प्रकृति व पर्यावरण से अति सन्निकटता व प्रीति रही है। वैदिक काल में अखिल विश्व की स्थिति आज से भिन्न थी। लोगों में सात्विक विचार व व्यवहार की प्रधानता थी। मनुष्य इस बात को समझता था कि ईश्वर ने उसे ही सबसे चेतनाशील प्राणी बनाया है एतदर्थ पर्यावरण को शुद्ध रखने का दायित्व भी उसी का है। भारत के प्राचीन ज्ञानकोष भी पर्यावरण को जीवन का अंग मानते हैं। भारत का पारंपरिक ज्ञान पर्यावरण के बिना जीवन की कल्पना नहीं करता। वेदों में पर्यावरण की रक्षा और सामाजिक दायित्व का विषद वर्णन किया गया है। पर्यावरण के प्रति सजगता व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं अपितु राज्य व देश स्तर पर होनी चाहिए तथा प्रयास तो यह भी होना चाहिए कि यह सजगता विश्व स्तर पर हो। इसी संदर्भ में यजुर्वेद में राजा को आदेशित किया गया है कि वन को जला कर प्राकृतिक सम्पदा को क्षति पहुचाने वालों को दण्डित करने का प्राविधान करे। श्रीमद्भागवत्महापुराण के अनुसार भी मानव को संसारगत विविध सम्पदाओं को ईष्वर प्रदत्त मानकर आवश्कतानुसार ही उपभोग करना चाहिए। आवश्यकता से अधिक ग्रहण करना चोरी जैसा दण्डनीय अपराध है।

"यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति।।''[2]

चाहे वह जन्तुओं से प्राप्त दुग्ध, ऊन आदि पदार्थ हों अथवा पौधो से प्राप्त फल, फूल, बीज, लकड़ी आदि हो, इन पदार्थो का जीव जन्तुओं एवं वनस्पतियों का बिना उत्पीड़न किए आवश्यकतानुसार प्रयोग ही शास्त्रसम्मत है। वास्तव में हमें ऐसे ही सुख की इच्छा करनी चाहिए जो 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' होय जिससे दूसरों का भी कल्याण हो। यही चीज़ आज समाज से विलुप्त होती जा रही है। आज भी भारत के विभिन्न क्षेत्रों में सास्कृतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परम्पराओं का अपना अलग ही महत्व है। इन परंपराओं का जैव-विविधता के साथ मजबूत संबध प्राचीन काल से ही रहा है। किसी भी पारिस्थितिकीय तंत्र में जितने भिन्न-भिन्न प्रकार के जीव-जन्तु व पौधे पाये जाते है वहाँ उतनी ही अधिक जैव-विविधता होती है।

जैव-विविधता का ह्रास भी पर्यावरणीय परिवर्तन से उत्पन्न होने वाली एक बड़ी समस्या है। जैव-विविधता सभी धरती वासियों की साझी समस्या है जिसकी रक्षा भी विश्व समुदाय का सामूहिक उत्तरदायित्व है। संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ. ए. ओ.) के अनुसार अकेले 20वीं सदी में फसलों की 5000 किस्में लुप्त हुई हैं साथ ही विश्व के कुल खाद्य एवं कृषि मूल्य में 30 प्रतिशत का योगदान करने वाले मवेशियों में से 25 प्रतिशत के करीब अर्थात् 4000 नस्लें प्रति वर्ष समाप्त होती जा रही हैं। भारतवर्ष में 45000 से ज्यादा पादप प्रजातियां पायी जाती हैं जिनमें 4900 पुष्पी पादप शामिल हैं। हमारे देश में 19 करोड़ 626 लाख एकड़ वन क्षेत्र है। इतनी बड़ी वन संपदा को संजोए हुए हमारा देश वर्तमान समय में एक जैव-विविधता संपन्न देश समझा जाता रहा है। आज भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या, औद्योगीकरण, तकनीकी विकास और विभिन्न विकास योजनाओं ने प्राकृतिक हरीतिमा को व्यापक क्षति पहुँचायी है।[3]

प्रकृति रक्षा से आत्म रक्षा -

जंगल व हरियाली के वातावरण में ही जीव-जंतुओं को निवास स्थान प्राप्त होता है तथा वे उन्मुक्त रूप से अपना पोषण व प्रजनन कर पाते हैं। जाने-माने पर्यावरणविद् अनिल प्रकाश जोशी का कहना है कि - वन्य जीवों का प्रकृति के साथ एक गहरा रिश्ता होता है और इसका महत्व समझते हुए ही हम हमेशा से उन्हे अपने मानस में एक विशेष स्थान देते आये हैं परन्तु अब इनकी अनदेखी के कारण ही हमारा प्रकृति से वह रिश्ता भी टूट रहा है। हम सिर्फ वन्य जीवों या सिर्फ अपनें आपको नहीं बजा सकते, बचाना तो पूरी प्रकृति को होगा अर्थात् जब हम प्रकृति की रक्षा करेंगे तो प्रकृति भी हमारी रक्षा करेगी। प्राचीन काल में धार्मिक महत्व के पेड़ पौधों को पूजनीय मान कर उन पर विशेष घ्यान दिया जाता था। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण मानव समाज का अभिन्न अंग रहा है परन्तु समय के साथ मानव नें जहां एक ओर ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में उत्तरोत्तर प्रगति की वहीं दूसरी ओर अपनी सुख-सुविधाओं एवं विलासिता के साधन जुटानें में उसकी पर्यावरण के प्रति चेतना एवं संवेदनशीलता लुप्त होती चली गयी। उसके त्याग की भावना एवं संस्कार मलिन होते चले गये। आज भी विलुप्तप्राय देशज संस्कारों को पुनर्जीवित कर जैव-विधता का कुछ हद तक संरक्षण किया जा सकता है। हमारे पूर्वजों द्वारा बनाई हुई परंपराएं व चलाए गए प्रचलन वैज्ञानिक व पर्यावरणीय दृष्टि से लाभप्रद हैं। लकड़ी, फल, फूल रसायनों, औषधियों आदि प्रकृति प्रदत्त उपहारों का अवैज्ञानिक तरीके से दोहन हमारी प्रचुर जैव संपदा को एक न एक दिन समाप्ति के कगार पर ला खड़ा करे देंगें । देश की बरसों से संजोई हुई बहुमूल्य जैव-विविधता (बायोडाइवर्सिटी) के क्षति की पीड़ा राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी के इस कथन में भी ध्वनित होती है कि - ''प्रकृति मानव के आवश्यकताओं की पूर्ति तो कर सकती है परन्तु लालच की कभी नहीं।'' सरला कालरा के अनुसार मानव पूर्णतया पर्यावरण पर निर्भर है।[4] यदि किसी देश में पर्याप्त जैव-विविधता नहीं होगी तो प्राकृतिक संसाधन भी पर्याप्त नहीं होगें जिसके फलस्वरूप उस राष्ट्र की प्रगति धीमी पड़ जायेगी।

आंकड़ों को देखने से पता चलता है कि जितनी वस्तुएं हम प्रकृति से प्राप्त करते हैं हमारे पूर्वजों ने उनकी पुनः पूर्ति के लिए नियम बनाए थे। इन नियमों का कठोरता से पालन हो सके इसके लिए ये नियम जन मानस की भावनाओं एवं धार्मिक मान्यताओं से भी जोड़े गए थे। उदाहरण के तौर पर हमारे समाज में बहुत से पेड़-पौधे और पशु-पछियों की पूजा की जाती है। कुछ पौधों/वृक्षों का विवरण, उन अवसरों का उल्लेख करते हुए, जब उन्हे पूजा व विशेष सम्मान दिया जाता है, निम्नवत हैं -

पूजे जाने वाले पौधे	अवसर
बाँस,	उपनयन संस्कार, विवाह, अंतिम संस्कार हेतु शव ले जाते समय।
आम, महुआ, केला, तिल, कुश	विवाह
बरगद	वट सावित्री व्रत
शमी, पीपल	शनिवार व्रत
आँवला	कार्तिक मास की नवमी तिथि, कार्तिक पूर्णिमा
तुलसी	देवोत्थान एकादशी, तुलसी विवाह
गूम, भटकटैया	कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि (भैया दूज)
कैंथ, जामुन	गणेश चतुर्थी,
नरियल का फल, पत्ता युक्त ईख, कच्ची हल्दी	कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी से सप्तमी तिथि तक चलनें वाला पर्व (छट पूजा)
पीत चंदन	बृहस्पतिवार व्रत

स्पष्टतः हमारे पूर्वज जैव-विविधता व पर्यावरण संरक्षण के प्रति काफी संवेदनशील थे। यदि हम स्वयं में उनके समान थोड़ी भी संवेदनशीलता विकसित करें और अपने पारंपरिक ज्ञान का भी उसमे समावेश कर लें तो एक निश्चय ही एक स्वस्थ पर्यावरण स्थापित हो सकता है और समृद्ध जैव-विविधता के साथ हमारा राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा।

संदर्भ सूची-

1. यजुर्वेद, अध्याय 40, मंत्र 1
2. श्रीमद्भागवत्पुराण, स्कंद 7, अध्याय 14, श्लोक 810
3. ओम किशोर सिंह (वर्ष 2002) ''नष्टप्राय पौधों के संरक्षण की जरूरत'' हिन्दुस्तान (हिन्दी दैनिक, वाराणसी/लखनऊ संस्करण, स्तंभः स्कूल टाइम्स, प्रकाशन तिथिः 07 सितंबर 2002), पृ0 सं0 09.
4. डॉ0 श्रीमती सरला कालरा (2013) प्राचीन भारत में लौकिक शिक्षा (ISBN 978-93-81951-28-6) प्रकाशक: लिट्रेरी सर्किल, जयपुर, प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं. : 291.
5. रमेश पोखरियाल 'निशंक' (2015) भारतीय संस्कृतिः सभ्यता एवं परंपरा, प्रकाशक डायमंड बुक्स नई दिल्ली, पृष्ठ सं0: 01